प्रतिलेखन संख्या 19

मदोदय, जब तक अहिंदी–भाषी हिंदी को हृदय से स्वकीार नहीं करते तब तक वह राष्ट्रभाषा का
स्थान नही पा सकती। और यह तभी हो सकता है जब वे यह समझें कि इसमें उनका भी योगदान
है और उन्होंने इससे केवल लिया ही नहीं बल्कि इसे कुछ दिया भी है और उन पर कोई दूसरी
भाषा लादी नहीं गई है बल्कि यह उनकी ही भाषा है। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं कि आप उनकी
ही व्याकरण अपना लें। इसका अर्थ यही है कि आप उदारतापूर्वक जितना ले सकते हैं ले लें। भाषा
इसी प्रकार बन सकती है। यह भी आवश्यक नहीं है कि उसको स्वीकार करने पर आप वही लिखना
आरंभ कर दें। परंतु जो वे लिखें, उसको आप गलत न समझें। आज किसी भी भाषा का रूप वही
नहीं है जो उसके प्रारंभिक काल में था। उसमें परिवर्तन होता रहता है। हिंदी के इतिहास में भी
आपको यही बात मिलेगी। मैं हिंदी का कोई विद्वान नहीं हूँ पर मैं अपने अनुभव से कह सकता
हूँ कि उसमें भी पिछले पॉच–छह सौ वर्षों में बहुत अंतर पडा है तथा पहले की और आज की हिंदी
में काफी अंतर है। इसलिए नवयुग में जब वह देश की भाषा बनने जा रही है तो उसमें थोडा अंतर
करना भी पडे तो वह स्वीकार कर लेना चाहिए जिससे उसका अन्य प्रदेशों के लोगों के साथ मेल
बैठ जाए। कई अहिंदी–भाषी लोगों ने भी हिदी की काफी सेवा की है। आपके राज्यपाल महोदय

अहिंदी–भाषी हैं और इन्होंने अपनी भाषा की बड़ी सेवा की है। यह भी हिंदी के पक्ष में थे और

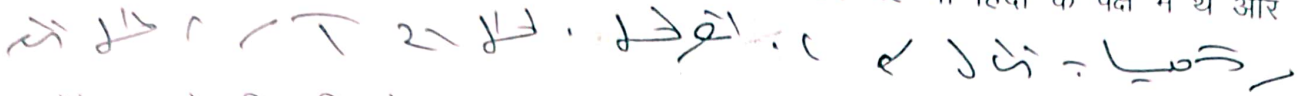

इन्होंने बड़ा योग दिया जिसके कारण हम संविधान सभा में सफल हो सके। इनका भी यही विचार

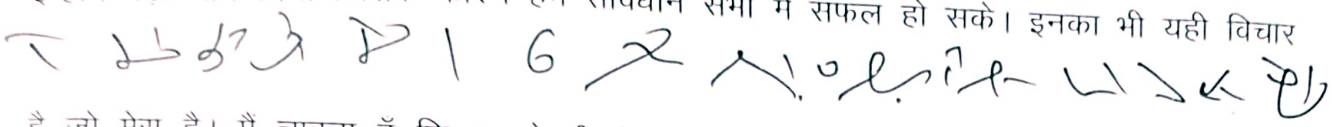

है जो मेरा है। मैं चाहता हूँ कि इनको भी हिंदी की सेवा करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

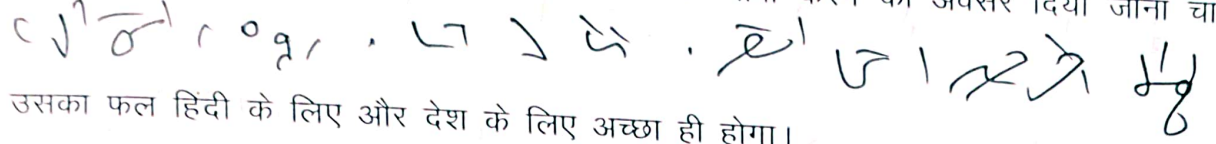

उसका फल हिंदी के लिए और देश के लिए अच्छा ही होगा।

मानपत्र में आपने संस्कृत के संबंध में कहा है। मैं मानता हूँ कि हमारे देश में संस्कृत का अध्ययन

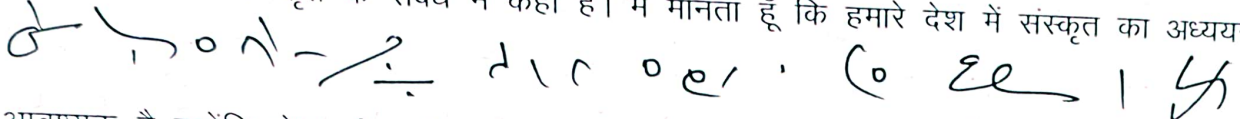

आवश्यक है क्योंकि देश की सभी भाषाओं का स्रोत वही भाषा है। संस्कृत से हमारा संबंध अटूट है।

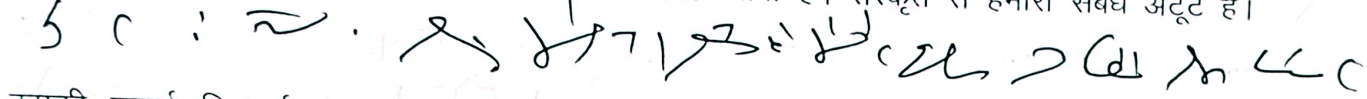

इसकी पढ़ाई–लिखाई कम हो गई है, यह हमारे लिए दुख की बात हैं। मैं आशा करता हूँ कि

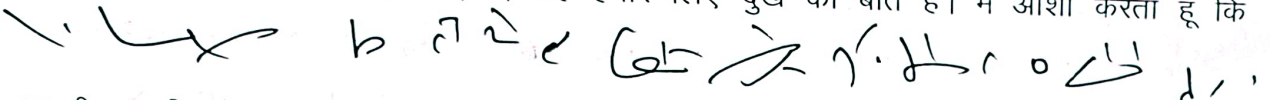

इसकी उन्नति होगी।